

## 1 संपादकीय नोट

"स्वराज आवाज" का पहला संस्करण आज दिनांक 6 दिसंबर को आप सभी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना हमारे लिए एक भावनात्मक क्षण है। इस पत्रिका को हम अपनी विचारधारा और राजनीति का अटूट अंग मानते हैं। भारतीय सन्दर्भ में 6 दिसंबर की एक विशेष महत्ता बाबासाहेब अंबेडकर की पुण्यतिथि अथवा महापरिनिर्वाण दिवस को लेकर है, जो हमारे समक्ष सामाजिक न्याय की अलख जगाता है। इसी विचार को नमन करते हुए "स्वराज आवाज" की संपादकीय टीम पहला संस्करण सामाजिक न्याय को समर्पित करती है। पत्रिका की संपादकीय टीम का मत है कि आज के दौर की राजनीति के अनुसार हमें सामाजिक न्याय की व्यापकता को विभिन्न आयामों में देखना चाहिए, और इस संस्करण में छपी रचनायें सामाजिक न्याय की इसी व्यापकता को पाठकों के समक्ष रखती हैं। पहला संस्करण होने के कारण इस बार कई कमियां जरूर रह गई होंगी। इसके लिये पाठकों से विनम्र निवेदन है कि इस पर अपनी प्रतिक्रिया अवश्य दें, ताकि आने वाले संस्करणों में हम इन कमियों को दूर कर सकें। अंत में सभी पाठकों का "स्वराज की आवाज" के हमारे प्रयास को प्रेम और समर्थन देने के लिए आभार।

## 2 क्या आरक्षण: उचित है? जरूरी है? पर्याप्त है?: योगेंद्र यादव

भारतीय समाज में कुछ ऐसे विवादास्पद मुद्दे हैं जहाँ आकर व्यक्ति अपनी पहचान को लेकर सजग हो जाता है। कश्मीर का सवाल, हिन्दू-मुस्लिम का सवाल, महिलाओं का सवाल के साथ-साथ आरक्षण ऐसा विषय है, जहाँ पर ज्ञानवान-से-ज्ञानवान व्यक्ति भी लड़खड़ा जाता है। दुनियाभर में हम इस प्रकार के कई विवादित मुद्दे पाते हैं, परन्तु विश्वभर में इन पर एक सार्थक बहस होती है। दुर्भाग्यवश भारत में इन पर एक सार्थक बहस ना होकर बहस एक अलग रूप धारण कर लेती है।

दुनियाभर के समाजों में हम असमानता पाते हैं और हर समाज इनको खत्म करने का प्रयत्न करता है। भारत के संदर्भ में इस पर बात करते समय हमें इसे एक संतुलित विचार के साथ समझने का प्रयास करना चाहिए। आरक्षण के विषय पर बात करने से पहले हमें असमानता पर विचार करना होगा।

### असमानता पर चर्चा हम तीन सवालों के इर्दगिर्द करेंगे

1. हम किस प्रकार का समाज चाहते हैं?
2. क्या हम ऐसे समाज में रहते हैं?
3. हम किस तरह ऐसा समाज बनाएं?

### हम किस प्रकार का समाज चाहते हैं?

हम ऐसा समाज चाहते हैं, जहाँ हर व्यक्ति के पास "अवसर की समानता" हो। कोई भी अपने जन्म से सम्बन्धित पहचान, जैसे लिंग, धर्म, जाति या ग्रामीण परिपेक्ष, के आधार पर "अवसर की समानता" से वंचित ना रहे। हर किसी के पास अपनी योग्यता सिद्ध करने का अवसर हो।

### क्या हम ऐसे समाज में रहते हैं जहाँ सबको अवसर की समानता हो?

यह बड़े दुख की बात है, हम इस प्रकार के समाज में नहीं रहते हैं। हमारे समाज में अधिकतर लोगों का जीवन उनके जन्म की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। समाज में अनेकों आधार पर "अवसर की समानता" प्राप्त नहीं हो पाती।

### हम किस तरह वह समाज बनायें?

अधिकतर हम यह सुनते हैं कि भेदभाव को समाप्त कर हम वह समाज बना सकते हैं। क्या "अवसर की समानता" के लिए भेदभाव को समाप्त करना पर्याप्त होगा? अमेरिका ने 1960 के दौरान नस्लीय आधार पर

होने वाला भेदभाव समाप्त कर दिया था, परन्तु फिर भी अश्वेत समाज को "अवसर की समानता" नहीं मिल पाई। "अवसर की समानता" को पूर्णता हासिल करने के लिये लम्बे समय से मुख्यधारा से पिछड़े हुए वर्गों के लिये "विशेष अवसर" उपलब्ध करवाने होंगे, जिन्हें अंग्रेजी में "अफ़फ़र्मटिव एक्शन" (सकारात्मक कार्रवाई) भी कहा जाता है।

इस आधार पर समाज में "अवसर की समानता" स्थापित करने के लिये सकारात्मक कार्रवाई के सिद्धांत का उपयोग किया जाता है। इन विशेष अवसरों द्वारा वंचित और पिछड़े वर्गों के लिये "अवसर की समानता" प्रदान की जाती है। इनमें से एक रास्ता है "आरक्षण"। वैसे तो आरक्षण विभिन्न आधारों पर विभिन्न वर्गों को दिया जाता है जैसे - महिलाएं, भूतपूर्व-सैनिकों, दिव्यांग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग इत्यादि। परन्तु भारत में राजनीति और बहस केवल जाति-आधारित आरक्षण पर होती है।

यह बहस मुख्य रूप से दो बिन्दु पर होती है:

1. आरक्षण क्यों होना चाहिए?
2. अगर आरक्षण होना चाहिए, तो जाति-आधारित क्यों हो?

"अवसर की समानता" और विशेष अवसर पर बात करते हुए हमने पहले बिन्दु पर बात कर ली है, की आरक्षण क्यों होना चाहिए। दूसरे बिन्दु अर्थात् "आरक्षण जाति आधारित क्यों", के विषय पर अक्सर यह कहा जाता है, इससे मेरिट (योग्यता) को नजरअंदाज कर दिया जाता है। आम तौर पर योग्यता को ही अवसर का आधार माना जाता है, परन्तु हमें इसमें कई कमियां पाई जाती हैं। उदाहरण के लिये हम एक ग्रामीण इलाके के बच्चे की तुलना शहर के सम्पन्न बच्चे से करते हैं। ग्रामीण बच्चा जिसके घर में माता-पिता कम पढ़े-लिखे हैं और मजदूरी कर जीविका चलाते हैं, वहीं शहरी बच्चे के माता-पिता शिक्षित हैं। जहाँ एक तरफ शहरी बच्चे को परिवार द्वारा पढ़ाई में लगातार मदद मिलती है, ग्रामीण बच्चे के पास यह सुविधा नहीं है। क्या हम इन दोनों को एक पटल पर रख सकते हैं? क्या दोनों की योग्यता एक समान हो सकती है? जवाब है, नहीं।

यह उदाहरण हमें बताता है की कुछ वर्गों को विशेष अवसर प्रदान करके "अवसर की समानता" को बनाना जरूरी है। आरक्षण की बहस में सवाल पूछा जाता है, "यह जाति-आधारित क्यों हो? और अगर जाति आधारित

हैं, तो मात्र कुछ जातियों के लिये क्यों?" इन्हीं सवालो के इर्द-गिर्द हम ऐसा तर्क दिया जाता है। इस पर कुछ आंकड़ों पर गौर करें। अक्सर सुनते हैं, की जाति तो अब रही नहीं। खास कर शहरी इलाकों में

वर्ग	जनसंख्या अनुपात
अनुसूचित जाति	17% (2011 की जनगणना अनुसार 16.2%)
अनुसूचित जनजाति	9% (2011 की जनगणना अनुसार 8.2%)
अन्य पिछड़ा वर्ग	44% (एनएसएस)
<b>आरक्षित वर्ग कुल जनसंख्या</b>	<b>70%</b>
अनारक्षित वर्ग	30%

तालिका 1: जाति जनसंख्या अनुपात

अनारक्षित वर्ग में हिन्दू उच्च-जाति की संख्या लगभग 20% है। इसमें से महिलाओं को हटा देने से यह संख्या मात्र 10% रह जाता है।

टीवी संपादक	88%
टीवी पैनलिस्ट	70%
लेख	72%

तालिका 2: मीडिया में हिन्दू उच्च-जाति का अनुपात (ऑक्सफैम रिपोर्ट, 2019)

इसके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण पदों पर ऊँची जाति का अनुपात 70-80% है।

सतीश देशपांडे द्वारा एनएसएसओ के आंकड़े पर आधारित विभिन्न कॉलेजों (शहरी इलाकों में जहां अनारक्षित वर्गों का अनुपात थोड़ा ज्यादा होता है) में जाति का अनुपात:

वर्ग	मेडिकल कॉलेज	इंजीनियरिंग कॉलेज	स्नातक कॉलेज
हिन्दू उच्च-जाति	67	66	66
हिन्दू अन्य पिछड़ा वर्ग	15	10	13
हिन्दू अनुसूचित जाति	2	2	4
हिन्दू अनुसूचित जनजाति	1	2	1
मुस्लिम	5	10	6

तालिका 3: कॉलेज में जाति का अनुपात

इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण शिक्षण संस्थानों में 65-70 % छात्र सामान्य वर्गों से आते हैं और अध्यापकों में यह अनुपात 70% है। यह सब आरक्षण होने बावजूद है।

इसके साथ एक अन्य तर्क दिया जाता है, "क्या जाति ही असमानता का एकमात्र आधार है।" हम मानते हैं कि समाज में असमानता के अन्य आधार भी हैं, जैसे - महिला-पुरुष, अमीर-गरीब और ग्रामीण-शहरी। इनमें एक असमानता जाति-आधारित असमानता है। एक सबसे कूर लगने वाली अमीर-गरीब की असमानता को आंकड़ों के आधार पर समझते हैं।

अश्विनी देशपांडे और राजेश रामचंद्रन द्वारा इंडिया ह्यूमन डेवलपमेंट सर्वे के आंकड़ों पर गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की शैक्षिक और रोजगार की स्थिति:

वर्ग	कम-से कम बारहवीं पास शिक्षा	दिहाड़ी से बेहतर काम
गरीब ब्राह्मण	40%	29%
गरीब अन्य ऊँची जाति	16%	11%
गरीब अनुसूचित जाति	12%	8%

तालिका 4: गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की शैक्षिक और रोजगार की स्थिति

यह आँकड़े बताते हैं कि सारे गरीब एक समान नहीं हैं। एक गरीब ब्राह्मण के पास पैसा ना हो, परन्तु उसके पास कई इस प्रकार के संसाधन होते हैं जो उसे दलित गरीब से आगे खड़ा कर देते हैं। अगर गरीब ब्राह्मण का बच्चा पढ़ नहीं पा रहा है, तो उसे अपने नाते-रिश्तेदारों के पास भेज पढ़ाया जा सकता है। इसे "सोशल कैपिटल" या सामाजिक पूंजी कहा जाता है। मतलब, अगर उच्च-जाति के पास पूंजी नहीं भी हो, तो उसके पास "सामाजिक पूंजी" है। जबकि गरीब दलित के पास यह नहीं है।

इसके बाद कुछ तर्कों का रुख करते हैं, "आरक्षण जाति आधारित क्यों होना चाहिए":

1. जाति हमारे समाज में मौजूद असमानता का दर्पण है। जाति को समझ हम समाज में मौजूद असमानता को आसानी से माप सकते हैं।
2. सदियों से हमारे समाज में एक विशेष वर्गों को शिक्षा से दूर रखा गया है। इससे शिक्षा कुछ सीमित जातियों तक सीमित रखी गई है।
3. इसके अतिरिक्त बेशक असमानता कई हैं, लेकिन वहाँ भी जातिगत अंतर है।
4. आरक्षण मात्र एक तरीका नहीं है, सकारात्मक कार्रवाई के और तरीके हो सकते हैं। आरक्षण सबसे आखरी और मजबूत तरीका है।

एक दूसरा सवाल अक्सर पूछा जाता है, "आरक्षण का इस्तेमाल करते हुए कई वर्ष हो गये हैं, तो अब इसको बंद क्यों नहीं कर देना चाहिए?" इस सवाल पर हमें यह पूछना चाहिए, "क्या हमारे समाज में जातिगत भेदभाव खत्म हो गया है?" जैसे किसी बिमारी का उपचार बिमारी ठीक होने के बाद ही बंद किया जाता है, वैसे ही आरक्षण को सिर्फ जातिगत भेदभाव के खत्म के बाद ही बंद किया जा सकता है।

इसमें कोई शक नहीं की आरक्षण जरूरी है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। इसमें कुछ सुधारों की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, आरक्षण सिर्फ एक प्रकार की असमानता से लड़ने मात्र का हल है। जैसे हमने पहले भी बात की, हमारे समाज में मुख्य रूप से चार असमानता है, जिनमें एक

जाति-आधारित भेदभाव है। गरीब-अमीर की असमानता के लिए गरीब वर्ग के छात्रों को छात्रवृत्ति दिया जाना चाहिए, और उनके लिए कल्याणकारी योजना चलाई जानी चाहिए। ग्रामीण-शहरी असमानता के लिये ग्रामीण इलाकों में शिक्षा के संस्थान खोले जाने चाहिए।

आरक्षण में सुधार पर बात करते हुए, हमें यह ध्यान में रखना चाहिए की यह सीमित लोगों को ही लाभ दे पाया है। आरक्षण सिर्फ उसके लिए मददगार होता है, जो कम-से-कम दसवीं या बारहवीं की पढ़ाई कर चुका हो। कुछ सुधार निम्नलिखित हैं:

1. स्कूली शिक्षा को सुधारना। आरक्षण का फायदा सिर्फ उन्हें मिल पाता है जो दसवीं-बारहवीं की पढ़ाई कर लेते हैं। इसलिए, आरक्षण से भी ज्यादा जरूरी सरकारी स्कूलों में सुधार करना है।
2. शिक्षा, प्रतियोगी-परीक्षा या साक्षात्कार में भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देना और अंग्रेजी के दबदबे को खत्म करना। अंग्रेजी की समझ और शिक्षा समृद्ध वर्ग को ही मिली है। भारतीय भाषा का प्रयोग कमजोर वर्ग को अवसर प्रदान करेगा।
3. आरक्षित वर्गों की समीक्षा करना। हम देखते हैं, आरक्षित वर्गों में भी कई उपवर्ग इसका लाभ नहीं ले पाए हैं, और आरक्षण का लाभ कुछ उपवर्गों तक ही सीमित रह गया है। इसके दो उपाय हो सकते हैं। पहला, उप-कोटा बनना। दूसरा, जिन्हें एक पीढ़ी में एक स्तर पर आरक्षण का लाभ मिला है, उन्हें अगली पीढ़ी में उस स्तर पर आरक्षण में सबसे आखरी में लाभ मिले।
4. आरक्षण कि सूचियों का लगातार समीक्षा होनी चाहिये।
5. आरक्षण का दायरा बढ़ा कर इसे प्राइवेट सेक्टर में भी लागू करना चाहिए। सरकारी क्षेत्र में पूरे देश में मात्र 2 करोड़ पद हैं, जो लगातार घट रहे हैं। निजी क्षेत्र में भी आरक्षण को लागू किया जाना चाहिए। ऐसा प्रावधान अमेरिका में भी है जहां "वर्कप्लेस डाइवर्सिटी" को बढ़ावा देने के लिए, निजी कंपनियों में अश्वेतों को विशेष अवसर दिया जाता है।

इस चर्चा को विस्तार से जानने के लिए इस लिंक का प्रयोग करें <https://www.youtube.com/watch?v=XPASCcZK0Ao>

### 3 बिलकिस के संघर्ष में न्याय, समानता और सामान्य नागरिक की सुरक्षा की पुकार सन्निहित है: शालिनी मालवीय

15 अगस्त 2022 की सुबह जब राष्ट्र एक लम्बे संघर्ष के बाद अर्जित आजादी का 75वां वर्षगांठ मना रहा था, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लाल किले से एक बहुत ही भावनात्मक सम्बोधन में राष्ट्र को "नारी शक्ति" के रूप में महिलाओं की गरिमा के लिए खड़े होने के लिए कहा। उसी शाम बिलकिस बानो और उसके परिवार की अन्य महिलाओं के 11 बलात्कारियों को जेल से "अच्छे आचरण" का हवाला देते हुए रिहा कर दिया गया। इन बलात्कारियों की रिहाई पर माल्यार्पण कर खुशी मनाई गई, मिठाइयां बांटी गईं। स्पष्ट रूप से, इस प्रकरण के दो ही अर्थ निकल सकते हैं। एक, कि प्रधानमंत्री के आह्वान का उनके अपने ही राज्य में कोई महत्त्व नहीं है। या दूसरा, कि प्रधानमंत्री लाल किले के प्राचीर से भाषण में सिर्फ शब्दों के साथ खेल रहे थे। यह दोनों ही संभावनाएं चिंता योग्य हैं।

बिलकिस बानो मामले के 11 दोषियों की रिहाई को कानूनी दौड़पेंच के रूप में नहीं देखा जा सकता है। वास्तव में यह एक घटनाओं का क्रम है, जिसे परत-दर-परत देखने की ज़रूरत है। कहीं न कहीं, इन परतों में न्याय, समानता और सामान्य नागरिक की सुरक्षा की पुकार सन्निहित

है। और हर भारतीय नागरिक को इसका जायज़ा लेते हुए आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता है।

बिलकिस बानो को अदालतों से इंसोफ पाने में 19 साल लग गए। दोषियों को 2008 में जेल भेज दिया गया था, लेकिन बिलकिस का संघर्ष 2018 तक जारी रहा। गुजरात दंगों के दौरान पांच महीने की गर्भवती बिलकिस के साथ हुए बर्बर सामूहिक बलात्कार की भयावह घटना के बाद पहला साल उसके लिए अत्यंत अपमानजनक रहा था। वह सिर्फ एक बलात्कार पीड़िता ही नहीं थी, वह सामूहिक बलात्कार और अपनी मां और बहनों की हत्या, अपनी 3 साल की बेटी, जिसका सिर पत्थर पर मार कर फोड़ दिया गया था, की हिंसक हत्या की गवाह भी थी। इतनी दहशत के बावजूद उसकी एक नहीं सुनी जा रही थी। गुजरात राज्य ने एफआईआर दर्ज करने से भी इनकार करते हुए अपने पैर खींच लिए। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और उच्चतम न्यायालय के हस्तक्षेप के बाद ही सीबीआई द्वारा जांच शुरू की गई। बिलकिस को जान से मारने की घमकी मिलने पर इस सुनवाई को गुजरात से बाहर महाराष्ट्र ले जाया गया। आखिरकार 2008 में विशेष अदालत ने दोषियों को

आजीवन कारावास की सजा सुनाई, जिसे महाराष्ट्र उच्च न्यायालय ने बरकरार रखा और बाद में, 2018 में उच्चतम न्यायालय ने गुजरात सरकार को मुआवजा के रूप में 50 लाख रुपये और बिलकिस को नौकरी और घर प्रदान करने का निर्देश दिया। गौरतलब है कि इस अंतराल में जहां बिलकिस अपने जीवन के बिखराव को समेत रही थी, ये दुर्दांत अपराधी पैरोल पर लगातार जेल के बाहर आते रहे।

और फिर 15 अगस्त 2022 को इस मामले में पीड़िता बिलकिस बानो से सलाह किए बिना ही सभी 11 दोषियों को 1992 की नीति के अनुसार रिहा कर दिया गया। जबकि निर्भया की घटना के बाद बनी 2014 की नीति बलात्कारियों को छूट देने से साफ इंकार करती है। पूरी प्रक्रिया पर अस्पष्टता बनी रही, क्योंकि बिलकिस बानो को अभी तक छूट आदेश की प्रति नहीं मिली है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि दोषियों के वकील के पास छूट आदेश की प्रति भी है या नहीं।

ऐसा हो सकता है कई लोग इसे एक व्यक्ति की व्यक्तिगत त्रासदी के रूप में देख सकते हैं, लेकिन इससे देश के प्रत्येक नागरिक को चिंतित होना चाहिए। क्योंकि यह एक ऐसा दुखदाई प्रकरण है जो किसी भी न्यायसंगत समाज का मज़ाक उड़ाने जैसा है। यह अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न के लिए महिलाओं के बलात्कार से लेकर, न्याय के लिए स्थापित प्रक्रिया की विफलता, और बहुसंख्यकवाद की कूर स्वीकृति पर समाज की चुप्पी को दिखाता है। इस सबके बाद, देश भर में महिलाओं के विरोध के बावजूद, भाजपा ने गुजरात चुनाव में इनमें से एक बलात्कारी की बेटी को मैदान में भी उतारा। बिलकिस ने अब 11 दोषियों की सजा में छूट के खिलाफ माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

### 3.1 बलात्कार केवल यौन अपराध नहीं है, यह किसी व्यक्ति को अपमानित करने के लिए हिंसा है

बावजूद इसके कि भारत ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करते ही महिलाओं को समान मतदान अधिकार दिया, सच्चाई यह है कि लैंगिक असमानता और पितृसत्ता एक वास्तविकता बनी हुई है। जबकि "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" के नारे विभिन्न सरकारी कार्यालयों में लगाए जाते हैं और रैलियों में गूंजते हैं, जमीनी हकीकत भयावह है। एनसीआरबी के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2020 में कुल 43,196 बलात्कार के मामलों (लंबित और वर्तमान) में केवल 23,693 को चार्जशीट किया गया, जबकि 28,808 को पुलिस ने ही निपटा दिया। तो क्या पुलिस बलात्कार जैसे अपराध को खुद ही निपटा सकती है? हालाँकि, जो मामले अदालत में पहुँचते हैं, उनमें भी सज़ा सुनाये जाने के आंकड़े कोई बहुत अच्छे नहीं हैं। एनसीआरबी के 2020 के आंकड़ों से पता चलता है कि सुनवाई के कुल 169,558 बलात्कार के मामलों में से केवल 3,814 मामले में आरोपी को दोषी ठहराया गया, जबकि 5,403 को बरी कर दिया गया। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि बलात्कार के कई मामले दर्ज ही नहीं होते हैं। चौथे राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार 99.1% से अधिक यौन हिंसा के मामले रिपोर्ट नहीं होते। यहां भी बिलकिस अपने बलात्कारियों को जानती थी, जो उसके पड़ोसी थे, जो उससे दूध खरीदते थे, जिन्हें वह चाचा और भैया कहकर संबोधित करती थी। उसकी गवाही के अनुसार, वह उनसे उसे बरखाने की गुहार लगाती रही, लेकिन किसी भी पुरुष ने पड़ोसी के भरोसे का सम्मान नहीं किया, सभी नफरत से अंधे हो गए थे।

बिलकिस ने इस तरह की चुनौतीपूर्ण व्यवस्था का सामना करते हुए एक बलात्कार पीड़िता के रूप में लड़ाई लड़ी। एक महिला जिसके पास कोई संसाधन नहीं था, बमुश्किल पढ़ी-लिखी थी, उसे एक ऐसी व्यवस्था के

हमले का सामना करना पड़ा, जो शायद ही बलात्कार पीड़ितों के लिए खड़ी होती है।

### 3.2 नफरत एक भावना है जो पूर्वाग्रह और अन्याय की भावना से प्रेरित होती है

घृणा अपराध किसी व्यक्ति के खिलाफ अपराध नहीं है, यह एक सामाजिक समूह के खिलाफ उनके धर्म, भाषा, जातीयता, विश्वासों में अंतर के कारण पूर्वाग्रह से प्रेरित होता है। 2022 में गुजरात में जो हुआ वह एक समुदाय के खिलाफ फैलाई गई घृणा का परिणाम था, और गोधरा ट्रेन जलाने के एक और घृणा अपराध की प्रतिक्रिया के रूप में जायज़ ठहराया गया था। हालाँकि ट्रेन को जलाना निश्चित रूप से निन्दनीय है और इस अपराध के दोषियों को न्यायिक प्रणाली के अनुरूप दण्डित करना ही चाहिए, लेकिन एक समुदाय के खिलाफ प्रतिशोध की कार्रवाई को सही नहीं ठहरा सकता है। देश के बंटवारे से 1984 के सिख-विरोधी दंगों, कश्मीरी पंडितों के पलायन, 2002 के गुजरात दंगों, यूपी के मुजफ्फरनगर दंगों और हरियाणा के जाट आंदोलन तक भारत ने पहले भी ऐसी नफरत की बड़ी कीमत चुकाई है। हालाँकि, अपने लोकलुभावन रुख के बावजूद, राजनीतिक संस्थान कुरख्यात तत्वों को सार्वजनिक रूप से शायद ही कभी प्रोत्साहित करते हुए देखे गए। लेकिन अब स्थिति ये हो गयी है कि इस तरह के घृणित अपराधों से "पीड़ा" होने का यह पहलू भी अब आवश्यक नहीं लगता है। उल्टा इन पर गर्व किया जाता है।

हमने हाल के दिनों में गोहत्या के बहाने मॉब लिंगिंग, घोड़े की सवारी करने या मूँछ रखने पर दलितों के खिलाफ हिंसा, और नफरत फैलाने वालों को सम्मानित होते हुए देखा है। 2002 में बिलकिस ऐसे ही अपराध की शिकार हुई थी, लेकिन चिंता की बात यह है कि दो दशक बाद, जब उसके अपराधियों को रिहा किया गया, तो उनका नायकों जैसा स्वागत हुआ। संदेश यह है कि नफरत तब तक स्वीकार्य है जब तक सत्ता अपराधियों के साथ खड़ा है। इस घटना को अन्य घटनाओं की निरंतरता की तरह देखा जाना चाहिए, जहां सुल्ली डील्स और बुल्ली बाई के निर्माताओं और प्रमोटर्स को "निर्दोष" युवा बता कर हल्के ढंग से छोड़ दिया गया, जबकि अपमानित महिलाएं आज भी अपमान झेल रही हैं, और आए दिन ऑनलाइन ट्रोलिंग का शिकार हो रही हैं।

statista.com की एक रिपोर्ट बताती है कि सितंबर 2015 से दिसंबर 2019 के बीच घृणा अपराध की 928 घटनाएं हुईं, जिनमें से 619 दलितों के खिलाफ और 196 मुसलमानों के खिलाफ थीं। विडंबना यह है कि एनसीआरबी ने 2017 में मॉब लिंगिंग और घृणा अपराध के मामलों पर डाटा एकत्र किया था, लेकिन गृह मंत्रालय के अनुसार डाटा "अविश्वसनीय" होने के कारण इस अभ्यास को बंद कर दिया गया। यह जानकारी सरकार ने लोकसभा में पूछे गए एक सवाल के जवाब में दिया।

बिलकिस और उसके परिवार के साथ हुए अन्याय को घृणा अपराध न मानना भूल होगी। जब मुख्यधारा की मीडिया से लेकर सोशल मीडिया तक का शोर गगनभेदी है, तब सांप्रदायिक धुवीकरण को बढ़ाने के लिए मकसद से किए गए ऐसे घृणा फैलाने वालों की रिहाई को हल्के में नहीं लिया जा सकता है।

### 3.3 कानून सम्मत हमेशा न्यायपूर्ण नहीं होता है?

किसी भी कानूनी प्रणाली में कानून का भाव न्याय सुनिश्चित करना है। हालाँकि, कई लोगों द्वारा कानून की अदालत और न्याय की अदालत के बीच अंतर बताया गया है। भारत की न्यायिक प्रणाली को यह सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया था कि ये दोनों अदालतें अभिसरित हों और



अधिकांश लोग जीविकोपार्जन के लिए शहरों की तरफ भाग रहे हैं। किसानों से विस्थापित शहरी कामगारों के बल पर ही किसानों के परिवार जैसे-तैसे जीवन यापन कर रहे हैं। नोटबंदी, महामारी, और बेरोक-टोक आगे बढ़ती कूर आर्थिक व्यवस्था ने इन कामगारों की दशा को भी बदतर बना दिया है। किसानों के फसल का वाजिब दाम एवं कामगारों के श्रम का वाजिब मूल्य न मिलने से देश में गरीबी और आत्महत्याएं लगातार बढ़ रहे हैं। किसान अपनी फसल घाटे में बेचने के लिए मजबूर हैं। जब कभी किसान अपनी फसल के वाजिब दाम के लिए आवाज उठाते हैं, तो उन्हें लाठी-गोली खाकर शहीद होना पड़ता है। चाहे मन्दसौर हो या हाल का किसान आंदोलन हो।

जब किसानों को उनकी फसल का अच्छा दाम मिलता है, तो आस-पास के बाजारों में रौनक बढ़ जाती है। देश की अर्थव्यवस्था में तेजी के साथ-साथ समाज में खुशहाली भी बढ़ जाती है। इसलिए एमएसपी की मांग का महत्व बढ़ जाता है। एमएसपी पर कानूनी गारंटी की मांग किसान आंदोलन की एक जायज़ मांग है। कानूनी गारंटी का मतलब है कि चाहे सरकार खरीदे या बाजार, फसल की खरीद पर कम-से-कम न्यूनतम समर्थन मूल्य मिलना चाहिए।

खेती-किसानी में घाटा और बेरोज़गारी ने एक महामारी का रूप धारण कर लिया है। भारतीय समाज की इन दो बड़ी बीमारियों का सम्बन्ध क्या है? गौर से देखने पर पता चलता है कि दोनों बीमारियों की जड़ एक ही है। किसानों में घाटा और लगातार बढ़ती बेरोज़गारी इस देश की मौजूदा राजनैतिक और आर्थिक ढांचे में निहित है। रोजगार का महासंकट देश की उस आर्थिक व्यवस्था के चलते है, जो खेती और मजदूरी दोनों को घाटे का बनाये रखने पर ही फलती-फूलती है। इस महामारी का इलाज एमएसपी में है। जैसे ही किसान की फसल और कामगार के श्रम व ज्ञान का न्याय संगत मूल्य मिलना शुरू होगा, वैसे ही किसानों में घाटा और देश में बढ़ती बेरोज़गारी का समाधान दिखाई देने लगेगा। आज, देश की आधी से अधिक आबादी कृषि और संबन्धित क्षेत्र में कार्यरत है। मेरी अपनी समझ है कि यदि देश में कृषि उद्यम और वस्त्र उद्यम का वाजिब मूल्य मिले, तो देश की आधी बेरोज़गारी तुरंत खत्म हो जायेगी। एमएसपी में केवल किसान की आय का ही हल नहीं है, बल्कि इस देश की बेरोज़गारी का भी हल है।

आज दुनिया उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा है। व्यक्ति के श्रम, ज्ञान, विरासत, और संसाधन को हड़पने वाली व्यवस्थाएं आकार ले चुकी हैं। कम आय से जीविकोपार्जन एवं कारोबार करने वाले लोगों को दुनिया की आर्थिक संरचना ने अपने जाल में फंसाकर इधर-उधर भटकने के लिए मजबूर कर दिया है। यह आर्थिक व्यवस्था लोभ और ईर्ष्या में विकास का मूल देखती है। विडम्बना है कि जिस आर्थिक ढांचे को लोगों की खुशहाली का आधार बनना था, वही आज अनेक लोगों के लिए विपन्नता, हताशा और आत्महत्या की नौबत ला रहा है। यह स्पष्ट है कि किसानों को घाटे में रख कर पूरा देश ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था चलती है। बड़े शहरों की चमकीली कोठियां, हवाई जहाज उतारने वाले चौड़े-चौड़े हाईवे, जैसे विकास माडल किसान, कारीगर और

कामगार के श्रम एवं ज्ञान के मूल्य की लूट पर टिकी है।

किसान आंदोलन का संकेत है कि न्याय, त्याग और भाईचारा के मूल्य के मार्गदर्शन में अगले समाज परिवर्तन और नयी व्यवस्थाओं के बारे में सोचा जाना चाहिए। इस घाटे और लूट को खत्म करने की मांग देश और दुनिया बदलने की आवाज है। इसे परिवर्तन की मांग कहा जा सकता है। यह छोटी पूंजी के विस्तार एवं संरक्षण की मांग है। भारत की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा छोटी पूंजी के व्यवसाय में लगा है। किसान, कारीगर, बुनकर और तमाम ठेले, पटरी, गुमटी के दुकानदार और स्थानीय बाजारों के दुकानदार, छोटी पूंजी से जीविका एवं व्यवसाय चलाते हैं। किसान समाज के साथ छोटी पूंजी का बृहत्तर समाज बेरहम आर्थिक तानाशाही का दंश झेल रहा है। बेरोज़गारी का हल छोटी पूंजी के संरक्षण में है। पर्यावरण एवं प्रकृति को बचाने की अद्वैत शक्ति भी इन्हीं समाजों के पास है। भारत में बराबरी और खुशहाली का एक मात्र रास्ता भी यहीं से निकालता है।

भारत में सामाजिक विषमता के खिलाफ और सामाजिक न्याय के अगले चरण का सूत्र किसान आंदोलन में ही है। किसान आन्दोलन की एमएसपी की मांग का अर्थ और संदर्भ ऐसे समझें:

1. एमएसपी की मांग न्याय संगत आय की मांग है। इसी मांग में दुनिया पर छाये बेरहम आर्थिक जाल को काटने या भेदने की ताकत है। हमारी मांग है कि एमएसपी को कानूनी संरक्षण दो।
2. एमएसपी की मांग में रोजगार एवं आय के सवाल का हल है, और किसान, कारीगर, कामगार या छोटी-छोटी पूंजी से जीविकोपार्जन करने वाले बृहत्तर समाज की एकता का आधार है।
3. हर किसान परिवार में सरकारी कर्मचारी जैसी आय हो। एमएसपी का संघर्ष इस दिशा में आगे बढ़ने की शुरुआत है।
4. किसान के श्रम और ज्ञान का पूरा दाम तभी हासिल होगा जब उसे फसल का सही दाम मिलेगा।

देश का भविष्य तभी उज्ज्वल होगा जब किसानों को घाटे की नहीं रहेगी। आप मानो या न मानो लेकिन आप की आने वाली पीढ़ियों और भारत का भविष्य किसान एवं किसानों में है। आजाद भारत में कारीगर, किसान, गांव और गरीब आर्थिक लूट का शिकार रहा है। तमाम राजनैतिक-आर्थिक दंश झेलते हुए घायलावस्था में भी यह समाज न्याय, त्याग एवं भाईचारा के मूल्यों के साथ इस बेरहम बर्बर सत्ता को चुनौती दे रहा है। यह बात संयुक्त किसान मोर्चा के द्वारा चले 13 महीने के किसान आंदोलन ने साबित कर दिया है। आज दुनिया की अर्थव्यवस्था डगमगा रही है। अपने देश की अर्थव्यवस्था को बराबरी एवं खुशहाली रास्ते पर लाना, हमारे लिए एक चुनौती भी है और अवसर भी। आशा है कि देश का किसान नेतृत्व ऐसी स्थिति में एक नई आर्थिक संरचना के लिए एक मजबूत पहल करेगा और देश के आर्थिक और राजनीतिक भविष्य की दिशा निर्धारित करने में अपनी निर्णायक भूमिका निभायेगा। आईये, हम सब मिलकर देश, दुनिया, समाज एवं प्रकृति-पर्यावरण को बचाने के लिए किसानों के आय की न्याय संगत मांग, एमएसपी, के संघर्ष को आगे बढ़ाने में अपना योगदान करें।

## 5 सामाजिक न्याय की व्यापकता – गोलबंदी से आगे: सुनील कुमार

सामाजिक न्याय की राजनीति एक लंबे समय तक भारतीय राजनीतिक दर्शन एवं चर्चा का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। सामाजिक विभेद के कारण सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन में वंचित एवं शोषित समुदाय के विकास एवं समृद्धि के लिए सामाजिक न्याय द्वारा विभिन्न विषयों पर चर्चा

की जाती रही है। इन चर्चाओं का प्रयास मुख्यतः वंचित एवं शोषित वर्गों को मुख्यधारा में लाना रहा है, जिसमें उनको संविधानिक एवं सामाजिक अधिकार और सम्मान दिलाना मुख्य रहा है।

निःसंदेह सामाजिक न्याय की राजनीति आज के दौर में अपने मूल उद्देश्य

और सिद्धांत से भटकती पाई जा सकती है, लेकिन हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि यह भटकाव केवल शीर्ष राजनेताओं के कारण उत्पन्न हुआ है। जहां उनके द्वारा सत्ता सुख के लिए सामाजिक न्याय की राजनीति को प्रखर रूप में उठाया नहीं गया। इस भटकाव या समझौतावादी राजनीति ने सामाजिक न्याय की राजनीति के समक्ष कुछ सवाल उत्पन्न किए हैं।

यह सवाल या सामाजिक न्याय की सार्थकता उस समय ज्यादा आवश्यक प्रतीत होती है जब हिंदूवादी ताकतें राजनीतिक संरक्षण के द्वारा सामाजिक उन्माद फैला रहे हैं। सामाजिक न्याय के समर्थकों को यह विश्वास है कि हिंदूवादी तत्वों द्वारा फैलाया गया सामाजिक एवं सांस्कृतिक जहर का प्रतिकार केवल सामाजिक न्याय की राजनीति ही है। ऐसे समय में जब हिंदूवादी गोलबंदी बनाम सामाजिक न्याय की गोलबंदी का विचार प्रखर रूप में प्रचलित किया जा रहा है, उस समय यह सोचना आवश्यक है कि क्या सामाजिक न्याय की राजनीति गोलबंदी जैसे शब्दों या विचारों से मेल खाती है? इसी के साथ प्रयास होना चाहिए क्या गोलबंदी शब्द का इस्तेमाल सामाजिक न्याय की व्यापकता के अनुरूप है? कहीं यह शब्द सामाजिक न्याय के मूल भाव से विपरीत भाव तो नहीं रखता है?

## 5.1 सामाजिक न्याय और गोलबंदी के परिपेक्ष

भारतीय राजनीति के संदर्भ में गोलबंदी शब्द या यों कहें अवधारणा का प्रयोग अक्सर होता रहा है। मूलतः गोलबंदी का प्रयोग पहचान, धार्मिक सांप्रदायिक या जाति के इर्द-गिर्द संगठित करने पर रहता है। परंतु गोलबंदी के मूल भाव केवल संगठित करने तक सीमित नहीं रहते हैं, यह इससे आगे सामाजिक या धार्मिक विभेदों का प्रयोग करके राजनीतिक या चुनावी सफलता के लिए किया जाता रहा है। गोलबंदी पर आधारित राजनीति दिखावे के लिए हित और न्याय-अन्याय की बात बेशक करता रहा है, परंतु यह प्राथमिक रूप से उन्माद फैला राजनीतिक फसल काटने का प्रयास करता रहा है। 1990 के बाद उभरी राजनीति ने गोलबंदी के दो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

पहला और सबसे उग्र गोलबंदी की झलक हिंदुत्व की राजनीति में साफ दिखाई देती है। इस राजनीति में हिंदू धर्म के नाम पर विभिन्न उप-जातियों एवं संप्रदायों का एकीकरण किया गया और यह केवल सामाजिक प्रयास नहीं रहा। इसमें विभिन्न उप-जातियों को हिंदू धर्म के नाम पर मुस्लिम और अन्य अल्पसंख्यक वर्गों के बनाम कर सामाजिक और सांप्रदायिक उन्माद उत्पन्न करने का प्रयास किया गया। समकालीन भारत में मोदी-राज के दौरान यह गोलबंदी अपने जहरीले रूप में कई प्रश्नों के साथ भारत के अस्तित्व पर लगातार चोट कर रही है। यहां देखने को मिलता है कि गोलबंदी का प्रयोग अपने हित या अन्याय के खिलाफ संघर्ष से ज्यादा अन्य अल्पसंख्यक समाज के साथ उन्माद उत्पन्न कर राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति है।

दूसरी गोलबंदी की झलक सामाजिक न्याय के नाम पर हुई बेईमानी में दिखती है। जातिगत उत्पीड़न और पिछड़ापन से निजात पाने के लिए राजनीतिक प्रयोगों ने सामाजिक न्याय का चोला पहन कर गोलबंदी का जतन किया। मंदिर-मस्जिद के विवाद के साथ ही भारतीय राजनीति में मंडल और बहुजन राजनीति भी प्रफुल्लित होती है। जहां यह राजनीति वंचितों और शोषितों को न्याय और सम्मान देने का अथक प्रयास करती है, वहीं इसकी सीमा दलितों और पिछड़ों के मध्य कुछ उप-जातियों तक रहती है, जिस जातिगत उभार को सामाजिक न्याय के रूप में प्रस्तुत किया गया। इस राजनीति का प्रभाव यह हुआ कि इसने सामाजिक न्याय को संकीर्ण कर केवल जातिगत दलित और पिछड़े उभार तक सीमित कर दिया। इस राजनीति में गोलबंदी हिंदुत्व की राजनीति से अलग बेशक

थी, परंतु यह नकारात्मक राजनीति की झलक भी दिखाती रही है। यहां तक की इस राजनीति के अग्रणी राजनेताओं ने निजी लाभों और सत्ता सुख के लिए उप-जातियों और जातियों के मध्य नफरत या ऐसा कहे दूरी को बढ़ावा दिया।

गोलबंदी के दो प्रखर उदाहरण हिंदुत्व और मंडल-बहुजन राजनीति यह साफ बताती है कि इस धारा में राजनीति और पहचान धर्म या जाति का प्रयोग केवल उन्माद या वामस्य को फैलाने पर रहा है। यह धारणा या विचार सोचने पर मजबूर करता है कि क्या सामाजिक न्याय इतना संकीर्ण है कि यह उन्माद पर आधारित होगा? क्या सामाजिक न्याय की राजनीति वर्गों-संप्रदायों-जातियों या उप-जातियों के मध्य विभेद करके राजनीतिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास करेगा?

## 5.2 सामाजिक न्याय की व्यापकता

सामाजिक न्याय के सरोकारों और कार्यकर्ताओं के अथक प्रयासों द्वारा समकालीन समाज में एक सकारात्मक चेतना विकसित हुई है। हर्ष की बात है यह चेतना केवल वंचित या शोषित वर्गों तक सीमित नहीं है, प्रगतिशील और समतावादी विचार के समर्थकों द्वारा सामाजिक न्याय को सामाजिक उत्थान के लिए एक महत्वपूर्ण सिद्धांत माना गया है। सामाजिक न्याय की विचारधारा को हिंदूवादी या भाजपा/आरएसएस की कुंवित एवं संकीर्ण राजनीति के प्रतिकार या विकल्प के रूप में समझा जाता रहा है। निःसंदेह सामाजिक न्याय की बात धार्मिक एवं सांस्कृतिक कट्टरवाद के समाधान के रूप में की जा रही है परंतु इसकी व्यापकता केवल यहीं तक सीमित नहीं है। जहां भगवाकरण की राजनीति विभिन्न धार्मिक वर्गों के मध्य तनाव, घृणा एवं उन्माद पैदा करता है, तथा भारतीयता के सिद्धान्तों पर प्रश्न उत्पन्न करता है, वहीं सामाजिक न्याय की राजनीति भारतीय संविधान एवं भारतीयता के मूलभूत सिद्धान्तों की रक्षा करता है।

इसी तरह सामाजिक अवरोधों के कारण वंचित रहे वर्गों की बात सामाजिक न्याय मुखर होकर करता है। सामाजिक न्याय के सिद्धांत को गहराई से समझने से प्रतीत होता है कि इसकी व्यापकता जातिगत संकीर्णता में सीमित नहीं की जानी चाहिए जो भारतीय सन्दर्भ में लंबे समय से होता आया है। सामाजिक न्याय सभी वर्गों की बात करता है तथा अथक प्रयास करता है कि सभी वर्गों को उनका अधिकार एवं संसाधन प्राप्त हो। सामाजिक न्याय की अवधारणा या सिद्धांत एक प्रगतिशील एवं समतावादी सिद्धांत है जिसमें मुख्य ध्यान सभी पहचानों, वर्गों, समुदायों तथा संप्रदायों के मध्य शांतिपूर्ण संबंध स्थापित करना है। निःसंदेह सामाजिक न्याय के नाम पर अभी तक हुई राजनीति में जातिगत तनाव और संघर्ष के आधार पर कार्य करने का प्रयास हुआ है, परंतु इस अवधारणा को केवल यहाँ तक सीमित करना वाजिब नहीं होगा। सामाजिक न्याय की राजनीति को व्यापक बनाने के लिए मुख्यतः दो विषयों पर ध्यान केंद्रित करना होगा।

**जातिगत दायरे से आगे** आज के दौर में सामाजिक न्याय की अवधारणा और राजनीति को मंडल और बहुजन की राजनीति से आगे बढ़ सामाजिक सशक्तिकरण की राह अपनानी होगी। बेशक इस प्रकार की राजनीति में जातिगत न्याय की महत्ता रहेगी परंतु इसे जातिगत सीमा से आगे बढ़ना होगा, जहां जातिगत न्याय के साथ सामाजिक सौहार्द के प्रयास भी मौजूद रहेंगे। इसी प्रकार सामाजिक न्याय की राजनीति केवल कुछ जाति या उपजाति तक केंद्रित ना रहे। कुछ जातियों या उप-जातियों तक सीमित रहने के कारण सामाजिक न्याय की अवधारणा नकारात्मक रूप अस्तित्व-कार कर लेती है। समकालीन भारत के संदर्भ में सामाजिक न्याय

की अवधारणा को इस जातिगत बंधनों से आगे लेकर जाने का प्रयास करना चाहिए। निःसंदेह भारतीय समाज में दलित, आदिवासी और पिछड़ी जातियाँ मुख्यधारा के विकास से पीछे रह गई हैं, जिनमें सामाजिक और आर्थिक अन्याय शामिल हैं तथा सामाजिक न्याय की राजनीति को इन विषयों पर लगातार संघर्ष और कार्य करना होगा। लेकिन सामाजिक न्याय की अवधारणा को केवल यहां तक सीमित नहीं करना चाहिए। लंबे समय तक भारतीय परिपेक्ष में सामाजिक न्याय को केवल जातिगत न्याय की राजनीति समझा जाता रहा है। इसके स्थान पर आज की राजनीति में सार्थक रहने के लिए इस अवधारणा में अन्य सामाजिक वर्गों को भी शामिल करना होगा। बदलते वक्त में मांगों और समस्याओं में परिवर्तन आने की स्थिति में सामाजिक न्याय की राजनीति में उन्हें सम्मिलित भी करना होगा।

**जन आंदोलनों से निरंतर तालमेल** आज के दौर में सामाजिक न्याय की अवधारणा को जन आंदोलनों से निरंतर तालमेल या सामंजस्य बना कर चलना होगा। सामाजिक न्याय का आरंभ आंदोलनों और संघर्ष द्वारा हुआ, परंतु समय बीतने के साथ उनका जनांदोलन से नाता तोड़ दिया गया। जिस प्रकार सामाजिक न्याय

की राजनीति को समग्र वंचित वर्गों को साथ लेकर चलना होगा, उसी प्रकार उन्हें इन वर्गों के जनांदोलन और संघर्षों से लगातार सामंजस्य बना कर रखना होगा।

एक लंबे समय तक भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय की अवधारणा के ध्वजा वाहक मंडल और बहुजन राजनीति के इर्द गिर्द सीमित रहे हैं। इस धारा द्वारा सामाजिक न्याय की राजनीति में योगदान देने के स्थान पर इसे और इसकी पहुंच को सीमित किया है। इसका मुख्य कारण सामाजिक न्याय की अवधारणा को जातिगत राजनीति मान लेना रहा है। एक लंबे समय तक यह माना जाता रहा की केवल दलित और पिछड़े समाज की राजनीति ही सामाजिक न्याय की राजनीति है। गहराई से देखने पर यह प्रतीत होता है की सामाजिक न्याय की राजनीति केवल दोनों समाजों – दलित और पिछड़ी जाति और कुछ उप-जातियों की राजनीति या राजनीतिक सशक्तिकरण बनकर रह गया। इस तरह की राजनीति किसी भी मायने में सामाजिक न्याय नहीं हो सकती, यहां तक की यह संपूर्ण दलित और पिछड़े समाज की भी राजनीति नहीं मानी जा सकती है। आज के दौर में सामाजिक न्याय की व्यापकता को बढ़ाना होगा, तभी यह विचार हिंदूवादी राजनीति का प्रतिकार साबित हो सकती है – जो गोलबंदी क़तई नहीं होगी।

## 6 किसान आंदोलन का इतिहास: ममता नायक

किसान आंदोलनों का एक लंबा इतिहास रहा है। इस इतिहास में दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में हुए कई किसान विद्रोह की दास्तान दर्ज है। किसान आंदोलन कृषि नीति से जुड़ा एक सामाजिक आंदोलन है, जो किसानों के अधिकारों की बात करता है। इस आंदोलन की मुख्य मांगें कृषि उपज के लिए बेहतर दाम, कृषि मजदूरों के लिए बेहतर मजदूरी, काम करने की बेहतर स्थिति और कृषि उत्पादन में वृद्धि पर केंद्रित होती हैं। भारत में पहली बार संगठित किसान आंदोलन खड़ा करने का श्रेय स्वामी सहजानंद सरस्वती को जाता है। दण्डी सन्यासी होने के बावजूद सहजानंद सरस्वती ने रोटी को ही भगवान कहा और किसानों को भगवान से बढ़कर बताया।

इतिहास की एक और उल्लेखनीय घटना – आज से तकरीबन 115 वर्ष पहले 1907 में हुई, जब अय्यनकली ने "साधु जन परिपालन संगम" नामक संगठन की नींव डाली थी। इस संगठन ने दलितों की संतानों के लिए शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित करने का किया। इसके लिए अय्यनकली के आह्वान पर पुलया तथा अन्य जाति के दलित खेत-मजदूरों ने ऐतिहासिक हड़ताल शुरू किया, जिसमें प्रमुख मांगें दलित बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित करने, खेत-मजदूरों के साथ मारपीट व उन्हें झूठे मामलों में फंसाना बंद करने, स्तन ढकने के टैक्स को निरस्त करने, दुकानों में दलितों को अलग पात्रों में पानी व चाय देने की प्रथा बंद करने, काम के दौरान आराम का वक्त, और अनाज या अन्य चीजों के बजाय मजदूरी का भुगतान नकद राशि में करने की थी।

यह हड़ताल कई मायनों में अहम था। पहला, यह भारत का पहला शूद्र-दलित-किसान-मजदूर के नेतृत्व में शुरू किया गया आंदोलन था, जिसमें लाखों दलित खेत-मजदूरों ने भाग लिया। दूसरा, यह सीधा वर्ण-व्यवस्था और वर्ग-व्यवस्था के खिलाफ उठा विद्रोह था, जहां सेवक समझे जाने वाले किसान-मजदूर अपनी मेहनत का हिसाब मांगने लगे थे। हड़ताल काफी दिनों तक जारी रहा, जमींदारों को लगा कि भुखमरी का शिकार होने पर मजदूर काम पर लौट आएंगे, मगर हड़ताली अडिग रहे। स्थिति बिगड़ती देख कर रियासत के दीवान की मध्यस्थता में दलित आंदोल-

नकारियों के साथ जमींदारों का समझौता हुआ, जहां उन्होंने दलितों की मजदूरी बढ़ाने, स्कूल में प्रवेश दिलाने और आजादी से घूमने-फिरने की मांग मान ली।

25 सितंबर 2020 को भारत बंद से शुरू हुआ किसान आंदोलन एक साल से लम्बा चला। इस आंदोलन ने कई उतार-चढ़ाव देखे, बहुत कुछ सहा पर आखिरकार जीत हासिल की। इस जीत का सबसे बड़ा श्रेय किसान नेतृत्व को जाता है, जिन्होंने अपनी सूझबूझ से फेंसले लिए और जमीनी कार्रवाई से सरकार के दौंवपेंच को परास्त कर दिया।

दिल्ली की सीमा पर, टीकरी, सिंधु, शाहजहांपुर, गाजीपुर, चिल्ला, झटीकरा इत्यादि में, किसानों द्वारा अपनी मांगों को ले कर डेरा जमाया गया। किसानों की मांग तीन कृषि कानूनों को निरस्त करने, बिजली संशोधन विधेयक वापस लेने, पराली का सही निपटारा करने और मंडियों को मजबूत करने को लेकर थी। दिल्ली की सीमा पर किसान पूरी तैयारी के साथ आए थे। अपने साथ महीनों का राशन, कपड़े, रजाई, खाना बनाने लिए गैस सिलिंडर, बर्तन लाकर उन्होंने यह दिखा दिया कि उनके इरादे मजबूत हैं।

किसान आंदोलन की सफलता इस बात से समझी जा सकती है कि इस आंदोलन ने आम लोगों को जोड़ने का काम किया। आजादी के बाद देश का यह सबसे बड़ा किसान आंदोलन है जो इतने लंबे समय तक चला।

उल्लेखनीय है 2004 में बने स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों के तहत न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) व्यापक लागत का डेढ़ दोगुना तय किया जाना चाहिए। लेकिन इसकी जगह यहां निजी दायरे को बढ़ावा देना, 2014 में बनाई "शांता कुमार आयोग" की सिफारिशों को लागू करने जैसा है, जो कृषि और खाद्य प्रणाली क्षेत्र में सरकार की जिम्मेदारियों से हाथ खींचने की बात कहती है। इस समिति का कहना है कि सरकार को सार्वजनिक खाद्य वितरण प्रणाली में लाभार्थियों की संख्या 67 फीसदी से घटा कर 40 फीसदी कर देनी चाहिए। यानी इस का पूरा ध्येय सरकार का निवेश कम करने और निजी निवेश को बढ़ावा



देना है।

आइये जानते हैं वह तीन कानून क्या थे जिसके विरुद्ध देश के किसानों को आंदोलन करना पड़ा:

**कृषक उपज व्यापार और वाणिज्य (संवर्धन और सरलीकरण) कानून 2020** किसानों और सरकारों के बीच तकरार का यह मुख्य मुद्दा है। इसमें किसानों की मांग की धुरी एमएसपी की गारंटी और कॉर्पोरेंटों को कृषि से दूर रखने को ले कर थी। यह कानून एपीएमसी (कृषि उपज विपणन समिति) मंडियों में सुधार की जगह निजी उद्यमियों को खुली छूट परोसने का जरिया है। इस कानून के तहत एपीएमसी से अलग निजी बाजार को खोलने की बात है, जिस पर सरकार का कोई नियंत्रण या देखरेख नहीं होगा। यह "वन नेशन वन मार्केट" नहीं, दो समानांतर मार्केट का मॉडल खड़ा करता है।

**आवश्यक वस्तु (संशोधन) कानून 2020** यह कानून कहता है कि कृषि उपज जमा करने की अब कोई सीमा नहीं होगी। यानी साधारण भाषा में इस कानून के अंतर्गत अब किसान और कॉर्पोरेंट घराने बड़ी मात्रा में भंडारण कर सकते हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि वर्ष 1955 में कालाबाजारी रोकने के लिए भंडारण के खिलाफ कानून बनाया गया था। यानी, जो भंडारण एक समय पर गैरकानूनी और कालाबाजारी था, उसे अब कानूनी बनाया जा रहा है। सवाल यह उठता है कि भंडारण करने की हैसियत किस की है? एनएसएसओ (राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय) के 70वें सर्वे के अनुसार, ग्रामीण क्षेत्रों में बसने वाले कुल परिवारों (15.614 करोड़) में से 57.8 फीसदी परिवारों (9.2 करोड़) के पास ही खेती की जमीन है। इन भूसंपन्न किसानों में से 86.58 फीसदी छोटे व सीमांत किसान हैं। ये वे किसान हैं जिनकी खेती योग्य जमीन एक हैक्टेयर यानी 2.5 एकड़ से कम है। इस आबादी का भी कुल 69.44 फीसदी हिस्सा ऐसा है, जो एक एकड़ पर गुजर-बसर कर रहा है। यानी भारत में अधिकतर किसान छोटे व सीमांत हैं, जिन की हालत बहुत अच्छी नहीं है। वे अपने लिए भंडारण तो क्या, पक्का मकान तक नहीं बना सकते। यह स्थिति दिखाती है कि यह कानून सिर्फ कॉर्पोरेंट कालाबाजारी को कानूनी बनाने के लिए लाया जा रहा था।

**कृषि (सशक्तीकरण और संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा करार कानून 2020** इस कानून को सामान्य भाषा में कांट्रैक्ट फार्मिंग कहा जा रहा है। इसके तहत, किसान अब व्यापारी और कॉर्पोरेंट के साथ खेती को लेकर करार कर सकेगा और सीधा उस के लिए अपनी फसल बोएगा। इस मसले पर भारतीय किसान यूनियन के नेता साहब सिंह कहते हैं, इस कानून के लागू होने के बाद हमें बंधुआ मजदूर बना दिया जाएगा, उसके बाद हम लोग कोर्ट भी नहीं जा सकते।

सरकार द्वारा लागू किए गए इन कृषि कानूनों के खिलाफ सर्वप्रथम पंजाब से आवाज बुलंद हुई। लेकिन जहाँ आंदोलन का नेतृत्व पंजाब ने किया, बाद में भारत के अन्य राज्यों के किसान भी एकजुट होते गए। इस किसान आंदोलन को इस सदी का महा-आंदोलन कहा जाएगा। निश्चित रूप से किसान आंदोलन सफल रहा और किसानों की जीत भी हुई। लेकिन किसान खुश होने के साथ साथ थोड़ी से आशंकित भी हैं। क्योंकि उनकी समस्याएं हल नहीं हो गई हैं, बस कुछ नई परेशानियां दूर हुई हैं जिन्हें सरकार अपने बनाए गए कानूनों की आड़ में खड़ी करना चाह रही थी। समझदार किसान नेताओं व किसान भाई-बहनों ने सरकार की नीयत को भांप लिया, जिससे उन के सामने सदियों पुराने शोषणों के इतिहास के पन्ने खुल गए, और वे एकजुट हो कर सिर पर कफन बांधे सड़कों पर आ गए, ताकि पूँजीवादी ताकतें हावी न हो जाएं। यह सदियों से चले आ रहे दो वर्गों के वर्चस्व की लड़ाई थी जिसमें सरकार को झुकना पड़ा और किसानों की जीत हुई।

किसानों के लिए यह जीत बहुत बड़ी उपलब्धि है। यह न सिर्फ किसानों की जीत है बल्कि देश के उन समस्त नागरिकों की जीत है जो अन्न का उपभोग करते हैं। यह जीत देशवासियों की खाद्य सुरक्षा को बचाने की जीत है। यह जीत उस विश्वास को बल देने की है, जिसने एक मजबूत, संगठित और सशक्त आंदोलन के जरिए बड़े-से-बड़े अहंकारी शासक को झुकाने का काम किया है। यह सीमित हो रहे लोकतंत्र को बचाये जाने की भी जीत है।

19 नवंबर 2021 की सुबह पहली बार ऐसा हुआ कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के संबोधन से सही मायने में आशंकित देशवासियों के चेहरों पर मुस्कान देखने को मिली। संबोधन में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने एक वर्ष पहले देश के किसानों पर थोपे हुए तीनों कृषि कानूनों – कृषक उपज व्यापार और वाणिज्य (संवर्धन और सरलीकरण) कानून 2020, कृषि (सशक्तीकरण और संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा करार कानून 2020, आवश्यक वस्तु (संशोधन) कानून 2020 – को वापस

लेने की घोषणा की।

इस घोषणा ने अनगिनत विपदाओं, भीषण सर्दी-गरमी, बारिश-तूफान और मुख्यधारा की मीडिया व सोशल मीडिया का दुष्प्रचार झेल रहे किसानों की पीड़ा को कम करने का काम किया। यह जीत सरकार की बर्बरताओं – लाठी-डंडे, वाटर कैनन, आंसू गैस के गोले, फर्जी मुकदमे, रोड़ा-पत्थर, कंटीली तारों – के रास्तों के खिलाफ है। ऐसा कोई हथकंडा नहीं बचा था, जिसे सरकार ने इस आंदोलन को कुचलने के लिए अपनाया न हो। यहाँ तक की किसानों को खालिस्तानी, देशद्रोही, आतंकवादी, माओवादी, टुकड़े-टुकड़े गैंग और पाकिस्तान समर्थित भी कहा गया। यह जीत देश में चल रहे भगवाकरण के खिलाफ जीत है, जो समाज को धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के आधार पर बांटने की कोशिश कर रहा है। इस आंदोलन के चलते 700 से अधिक किसान भाई-बहनों की जान चली गई। यह बहुत दुःखद है कि उन्हें आज तक न्याय नहीं मिल पाया है।

एक साल तक किसान अपने खेतों को बचाने के लिए अपनी जान की परवाह किए बगैर शांतिपूर्ण तरीके से सड़कों पर बैठे रहे, अपने घर परिवार, खेत खलिहान सब कुछ त्याग कर किसान अनिश्चितकाल के लिए बॉर्डर पर डटे रहे। वह भी ऐसी सरकार से मांग मनवाने के लिए जो उन्हें किसान समझने को ही तैयार न थी। ठंड बारिश झेलना तो एक तरफ, किसानों पर गोदी मीडिया और भगवा प्रचार के माध्यम से प्रहार जारी रहा।

संविधान के कानूनों में समयानुसार बदलाव होते रहना समाज के निरंतर बदलाव को दर्शाता है। लेकिन समाज और कानूनों का बदलाव विकास की तरफ हो रहा है या विनाश की तरफ, यह देश को सदियों आगे भी ले कर जा सकता है और पीछे भी। जरूरी नहीं कि हर बदलाव से सुधार ही हो, कुछ बदलाव विनाश का कारण भी बन जाता है। ऐतिहासिक सुधार के नाम पर देश की जनता ने नोटबंदी को झेला और उसका भयावह

परिणाम देखने को मिला। इस एक कदम से लाखों नौकरियां और कई जिंदगियां स्वतंत्र हो गईं। जीएसटी को भारत की आर्थिक आजादी के रूप में दिखाया गया, जीडीपी दर 2 प्रतिशत बढ़ने का दावा भी किया गया। पर अफसोस की बात यह कि जीडीपी बढ़ने के बजाय लगातार नीचे लुढ़कती गई।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने तीनों कृषि कानूनों को वापस लेने की घोषणा करते हुए कहा, "मैं आज देशवासियों से क्षमा मांगते हुए, सच्चे मन से और पवित्र हृदय से कहना चाहता हूँ कि शायद हमारी तपस्या में ही कोई कमी रह गई होगी, जिस के कारण दीए के प्रकाश जैसा सत्य कुछ किसान भाइयों को हम समझा नहीं पाए। आज मैं आप को, पूरे देश को, यह बताने आया हूँ कि हमने 3 कृषि कानूनों को वापस लेने का निर्णय लिया है।"

दुष्प्रचार के बादल, जो किसानों की किसानों पर ही सवाल खड़ा कर रहे थे, अब छंटने लगे। "सच्चे मन" और "पवित्र हृदय" का तो पता नहीं, पर इस आंदोलन ने प्रधानमंत्री को यह मानने पर ज़रूर मजबूर किया कि आंदोलन में बैठे लोग सच्चे किसान हैं, वरना तो वे इन्हें "आंदोलनजीवी" जैसे खुद से गढ़े नाम से संबोधित कर चुके थे।

उनके शब्द थे, "दीये के प्रकाश जैसे सत्य को कुछ किसानों को हम समझा नहीं पाए।" दरअसल, सच्चाई यह है कि इन कृषि कानूनों की बुनियाद ही एक बड़े झूठ पर टिकी हुई थी, जिसमें किसानों के साथ धोखा के अलावा और कुछ न था। जिस समय देश तालाबंदी के चलते बंद पड़ा था, उस दौरान केंद्र सरकार ने बिना किसान संगठनों की सहमति लिए इन अध्यादेशों को कैबिनेट में पास करा दिया गया था। यह न सिर्फ किसानों को अंधेरे में रखने जैसा था, बल्कि किसी जालसाजी से कम न था।

2020 के सितंबर में आनन-फानन में एक हफ्ते के भीतर तीनों विधेयकों को संसद के दोनों सदन में बगैर चर्चा के जैसे-तैसे पास करा कर राष्ट्रपति की मुहर भी लगवा दी गई। राज्यसभा में तो विपक्षी नेताओं को सदन से बाहर कर ध्वनिमत से बिलों को पास कराया गया। अगर ये कानून दीये के प्रकाश के सामान सत्य थे तो प्रधानमंत्री को अंधेरे में इसे पास कराने की ज़रूरत क्यों पड़ गई? जहां तक बात इन तीनों कानूनों को समझने की है, तो यह जानना भी ज़रूरी है कि आज का किसान अनपढ़ नहीं है। यदि वह अपने हिसाबों का बहीखाता मांग रहा है तो उसे पढ़ना व समझना आता है।

## 6.1 किसान आंदोलन का घटनाक्रम

**5 जून 2020** तीन कृषि विधेयकों को अध्यादेश के रूप में लाया गया।

**14 सितंबर 2020** तीनों कृषि विधेयकों को संसद में पेश किया गया।

**17 सितंबर 2020** विधेयक लोकसभा में पारित।

**20 सितंबर 2020** राज्यसभा में ध्वनिमत से विधेयक पारित।

**24 सितंबर 2020** पंजाब के किसानों का तीन दिनों का रेल रोकने अभियान।

**25 सितंबर 2020** किसान संगठनों के भारत बंद के आह्वान पर देशभर के किसान सड़कों पर उतरे।

**26 सितंबर 2020** कृषि बिल को लेकर शिरोमणि अकाली दल (एसएडी) ने भाजपा के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) से नाता तोड़ा।

**27 सितंबर 2020** कृषि विधेयकों को राष्ट्रपति ने सहमति दी और तीन कृषि विधेयक कानून बन गए।

**25 नवंबर 2020** पंजाब और हरियाणा में किसान संगठनों ने "दिल्ली चलो" आंदोलन का आह्वान किया। कोविड प्रोटोकॉल

के कारण दिल्ली पुलिस ने अनुमति देने से इनकार कर दिया।

**26 नवंबर 2020** दिल्ली की ओर मार्च कर रहे किसानों को हरियाणा के अंबाला जिले में पानी की बौछारों और आंसू गैस के गोलों का सामना करना पड़ा और पुलिस ने उन्हें तितरबितर करने की कोशिश की।

**28 नवंबर 2020** गृहमंत्री अमित शाह ने दिल्ली की सीमाओं को खाली करने और बुराड़ी में निर्दिष्ट विरोध स्थल पर जाने के बाद ही किसानों के साथ बातचीत करने की शर्त रखी। किसानों ने उनके प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

**3 दिसंबर 2020** सरकार ने किसानों के प्रतिनिधियों के साथ पहले दौर की बातचीत की। बैठक बेनतीजा रही।

**5 दिसंबर 2020** किसानों और केंद्र के बीच दूसरे दौर की बातचीत भी बेनतीजा रही।

**8 दिसंबर 2020** किसानों ने भारत बंद का आह्वान किया। सभी राज्यों के किसानों ने इस आह्वान का समर्थन किया।

**11 दिसंबर 2020** तीन कृषि कानूनों के खिलाफ आरएसएस से जुड़े भारतीय किसान संघ ने सुप्रीम कोर्ट का रुख किया।

**16 दिसंबर 2020** उच्चतम न्यायालय ने विवादास्पद कृषि कानूनों पर गतिरोध को समाप्त करने के लिए सरकार और किसान संगठनों के प्रतिनिधियों के साथ एक पैनल के गठन का प्रस्ताव दिया।

**21 दिसंबर 2020** सभी घरना स्थलों पर किसानों ने एकदिवसीय भूख हड़ताल किया।

**4 जनवरी 2021** सरकार और किसान नेताओं के बीच 7वें दौर की बातचीत भी केंद्र सरकार द्वारा कृषि कानूनों को निरस्त करने की सहमत नहीं देने के कारण अनिर्णायक रही।

**7 जनवरी 2021** उच्चतम न्यायालय 11 जनवरी को नए कानूनों और विरोध के खिलाफ याचिकाओं पर सुनवाई के लिए सहमत हुआ।

**11 जनवरी 2021** उच्चतम न्यायालय ने किसानों के विरोध से निपटने के लिए केंद्र सरकार को फटकार लगाई। अदालत ने कहा कि वह गतिरोध को हल करने के लिए भारत के एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक समिति का गठन करेगा।

**12 जनवरी 2021** उच्चतम न्यायालय ने 3 विवादास्पद कृषि कानूनों के कार्यान्वयन पर रोक लगा दी और समिति का गठन कर दिया।

**26 जनवरी 2021** गणतंत्र दिवस पर किसान संगठनों द्वारा ट्रैक्टर परेड बुलाई गई।

**28 जनवरी 2021** गाज़ियाबाद जिले में प्रशासन ने विरोध कर रहे किसानों को रात में जगह खाली करने का आदेश जारी किया। गाज़ीपुर सीमा पर तनाव बढ़ गया, जिसमें राकेश टिकैत के आंसूओं ने आंदोलन में जान फूंक दी।

**2 फरवरी 2021** विदेशी समर्थन और टूलकिट का मामला।

**18 फरवरी 2021** संयुक्त किसान मोर्चा द्वारा देशव्यापी "रेल रोकने" विरोध का आह्वान।

**27 मई 2021** 6 महीने के आंदोलन को चिह्नित करने के लिए किसानों ने "काला दिवस" मनाया और सरकार का पुतला फूँका।

**5 जून 2021** कृषि कानूनों की घोषणा के पहले वर्ष को चिह्नित करने के लिए प्रदर्शनकारी ने संपूर्ण क्रांति दिवस मनाया।

**जुलाई 2021** किसानों ने संसद के मानसून सत्र के दौरान संसद भवन के पास एक समानांतर "किसान संसद" शुरू की, जिसमें प्रतिदिन 200 किसानों ने भाग लिया।

**7 अगस्त 2021** 14 विपक्षी दलों के नेताओं ने संसद भवन में बैठक की और दिल्ली के जंतर-मंतर पर आयोजित किसान संसद में जाने का फैसला किया।

**28 अगस्त 2021** हरियाणा पुलिस द्वारा करनाल में किसानों पर ला-

- ठीकाई से कई किसान घायल हो गए, एक की मौत हो गई।
- 5 सितंबर 2021** किसान नेताओं ने मुजफ्फरनगर में ताकत का एक बड़ा प्रदर्शन किया।
- 7-9 सितंबर 2021** किसान भारी संख्या में करनाल पहुंचे और लघु सचिवालय का घेराव किया।
- 4 अक्टूबर 2021** केंद्रीय गृह राज्यमंत्री अजय मिश्रा टेनी के बेटे आशीष मिश्रा ने अपनी कार से लखीमपुर में विरोध कर रहे किसानों को कुचला। घटना में 8 की मौत, कई घायल।
- 14 अक्टूबर 2021** आशीष मिश्रा को एसआईटी ने जेल भेजा।
- 29 अक्टूबर 2021** दिल्ली पुलिस ने गाजीपुर सीमा से बैरिकेड हटाना शुरू कर दिया, जहां किसान केंद्र सरकार के कृषि कानूनों का विरोध कर रहे हैं।

- 19 नवंबर 2021** प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कृषि कानूनों को निरस्त करने की घोषणा की।
- 21 नवंबर 2021** संयुक्त किसान मोर्चा ने एमएसपी सहित अपनी लंबित मांगों को लेकर प्रधानमंत्री को पत्र भेजा।
- 9 दिसंबर 2021** कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के सचिव श्री संजय अग्रवाल ने संयुक्त किसान मोर्चा को पत्र लिखकर किसानों की लंबित मांगों को जल्द ही पुरा करने के लिए केंद्र सरकार की तरफ से सहमति जताई और आंदोलन समाप्त करने का आग्रह किया।
- 11 दिसंबर 2021** संयुक्त किसान मोर्चा ने एक वर्ष से लम्बे चले किसान आंदोलन को स्थगित किया।

## 7 यूथ फॉर स्वराज: पुनीत कुमार

यूथ फॉर स्वराज, स्वराज अभियान के तहत गठित एक युवा संगठन है। यह संगठन महात्मा गांधी, राम मनोहर लोहिया, आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण जैसे महान भारतीय नेताओं और विचारकों से प्रेरित समाजवादी विचारों में विश्वास रखता है। भारत के लोकतांत्रिक मूल्य हमारे लिए सर्वोपरि हैं। हम एक ऐसे भारत का निर्माण करना चाहते हैं जो न्याय, बंधुत्व और स्वतंत्रता के दर्शन पर आधारित हो।

यूथ फॉर स्वराज फेसबुक लाइव और ट्विटर स्पेस जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के माध्यम से नियमित चर्चाओं के कार्यक्रम को आयोजित करता रहता है। हम रचनात्मक विचारों वाले ऊर्जावान युवाओं और स्वराज अभियान के अनुभवी और जानकार वरिष्ठ सदस्यों के बीच एक सेतु बनाना चाहते हैं। यह हमें उन समस्याओं से बेहतर ढंग से निपटने में मदद करता है जिन्होंने हमारे देश को जकड़ रखा है।

यूथ फॉर स्वराज द्वारा हाल में आयोजित कुछ कार्यक्रम:

- 28 सितंबर 2022 को यूथ फॉर स्वराज के साथी संजीव कुमार ने हिमालय नीति अभियान के अध्यक्ष कुलभूषण उपमन्यु से "हिमालय की बरबादी: सत्य, तथ्य और समाधान?" विषय पर फेसबुक लाइव के जरिए बातचीत की। हिमालय और पर्यावरण संकट की नींव औद्योगिक क्रांति ने रख दी थी। हिमालय में कुछ भी बदलाव आता है तो उसका प्रभाव हिमालय तक सीमित नहीं रहता, बल्कि इसका प्रभाव पूरे पर्यावरण पर पड़ता है। मौजूदा मुख्य धारा का विकास मॉडल हिमालय के अनुकूल दिखाई नहीं देता, जिसका परिणाम आज देश के सामने है। आज जरूरत है हिमालय के अनुकूल विकास मॉडल की। वीडियो का लिंक - <https://www.facebook.com/Youth4Swaraj/videos/760604128567579/?mibextid=NnVzG8>
- 11 अक्टूबर 2022 को जयप्रकाश नारायण की 120वीं जयंती पर "आज के भारत में जेपी नारायण की भूमिका" पर फेसबुक लाइव में, स्वराज अभियान के वरिष्ठ साथी प्रो० आनंद कुमार के साथ यूथ फॉर स्वराज के पुनीत कुमार ने चर्चा की। इस चर्चा में प्रो० आनंद कुमार ने बताया की कैसे आज के भारत और अपातकाल के समय के भारत में कुछ समानताएं

हैं, और कुछ भिन्नता भी है। उन्होंने दुख के साथ इस बात को माना की जेपी की संपूर्ण क्रांति सफल नहीं हुई, और हमारे सामने गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार जैसी समस्याएं ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। जेपी के सपनों का भारत बनाने के लिए युवाओं का योगदान बहुत महत्वपूर्ण होगा। वीडियो का लिंक - <https://www.facebook.com/Youth4Swaraj/videos/66812051199838/?mibextid=NnVzG8>

- 14 नवंबर 2022 को आजमगढ़ अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा विरोध में चल रहे किसान आंदोलन पर रिहाई मंच के युवा प्रतिनिधि राजीव यादव ने यूथ फॉर स्वराज के पुनीत कुमार से फेसबुक लाइव के जरिए बात की। उन्होंने बताया की आजमगढ़ के करीब 8 गांवों के किसान, जो अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे के बनने से सीधे प्रभावित होंगे, उसका विरोध कर रहे हैं। यह विरोध खेत, घर और जान बचाने की लड़ाई है। प्रशासन क्रूरता से इसे दबाने की कोशिश कर रहा है। लेकिन हर दिन किसान की हिम्मत और तादाद बुलंद हो रही है। वीडियो का लिंक - <https://www.facebook.com/Youth4Swaraj/videos/1770467976668308/?mibextid=NnVzG8>
- 26 नवंबर 2022 को यूथ फॉर स्वराज ने संविधान दिवस मनाया। यह 26 नवंबर 1949 की ऐतिहासिक तारीख थी, जब हमने अपने संविधान को अपनाया और अधिनियमित किया था। उच्चतम न्यायालय के अधिवक्ता और स्वराज अभियान के सदस्य प्रशांत भूषण ने ट्विटर स्पेस के माध्यम से "भारतीय संविधान: चुनौतियां और आगे की राह" विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने संविधान के उस मूल ढांचे पर प्रकाश डाला जो आज खतरे का सामना कर रहा है। संविधान द्वारा गारंटीकृत लोकतांत्रिक प्रणाली बिखर रही है। संवैधानिक निकाय अपनी स्वायत्तता खो रहे हैं। आगे के रास्ते के लिए हमें चुनावी प्रणाली पर फिर से विचार करने की आवश्यकता होगा, इलेक्टोरल बॉन्ड को खत्म करना होगा। धरातल पर जनआंदोलन भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करेगा। वीडियो का लिंक - <https://twitter.com/i/spaces/1YpKkgMQAwZKj>

## 8 इस घड़ी में: राजेन्द्र राजन

---

इतिहास तुम जब चाहो तब पढ़ सकते हो  
लेकिन जिंदगी में कभी-कभार ऐसी घड़ी आती है  
जब तुम इतिहास बनते हुए देखते हो  
एकदम करीब से

यह वह घड़ी होती है  
जब सच सतह के नीचे नहीं रहता  
दूर या किसी चीज की ओट में नहीं रहता  
सबके ऐन सामने आकर खड़ा हो जाता है  
ताकि वे लोग भी देख लें  
जिन्हें कुछ भी साफ-साफ नहीं दिखता

यह वह घड़ी होती है  
जब पीड़ा का पर्वत पिघलकर बहने लगता है  
जब एक सोया हुआ सपना सैलाब बनकर  
सड़कों पर उमड़ आता है  
जब उलटे पांव भागता रहा आदमी  
संगीनों के साये में तनकर खड़ा हो जाता है।  
लेकिन यह वह घड़ी भी होती है  
जब भरमाने और बहलाने का खेल और तेज हो जाता है  
जब साजिशों की बुनावट और महीन हो जाती है  
जब लालच और जोर से अपना जाल फेंकता है

जब डराने के नए-नए हथियार आजमाए जाते हैं  
जब शासन की शान में कसीदे पढ़ने वाले  
और जोर-जोर से गाते हैं  
जब आंख मूंदे रखने के फायदे बताए जाते हैं  
जब मुंह न खोलने का भी इनाम मिलता है  
जब अन्याय न्याय की पोशाक पहने दिखता है।  
चाहो तो तुम भी अपनी कीमत लगा सकते हो  
दरबारियों के सुर में सुर मिलाकर  
या अपना मुंह बंद रखकर  
या चाहो तो जोखिम उठाकर  
एक नए बनते हुए इतिहास की आंखों में झांक सकते हो  
उससे हाथ मिला सकते हो  
उसके साथ चल सकते हो  
जितनी दूर चाहो  
इस घड़ी में  
जब इतिहास बन रहा होता है  
कसौटी काफी कठिन हो जाती है  
और हर एक से पूछती है  
किस ओर हो तुम।

## 9 यह ऐसा निज़ाम है: राजेन्द्र राजन

---

वे तुम्हारे खेतों में  
अपने मुनाफे की फसल उगाना चाहते हैं  
वे तुम्हारी मेहनत को लूटना चाहते हैं  
वे तुम्हारे हाथों को बंधक बनाना चाहते हैं  
वे तुम्हारे दिमागों को गुलाम बनाना चाहते हैं  
ताकि तुम उनके हर निर्णय को  
बिना सोचे-विचारे कबूल कर लो  
वे तुम्हें ऐसी अंधभक्ति सिखाना चाहते हैं  
कि वे चाहे जितने गुनाह करें  
चाहे जितनी साजिशें रचें  
तुम उनकी जय-जयकार करो  
लोकतंत्र के मलबे पर खड़ा यह नया निज़ाम है  
जिसने सच और झूठ के फर्क को मिटा दिया है  
जिसने लफ्जों के मायने बदल दिए हैं  
तुम्हारी राह में कांटे बिछाकर  
कहा जा रहा है कि तुम्हारी राह

पहले से आसान हो गई है  
तुम्हें हर तरफ से घेरकर  
कहा जा रहा है कि तुम्हारे पास  
अब ज्यादा अवसर, ज्यादा विकल्प हैं  
तुम्हारे हाथ में एक धोखा थमाकर  
कहा जा रहा है लो  
यह रही तुम्हारी सौगात  
बिगाड़ को वे कह रहे हैं सुधार  
दुर्दिन को कह रहे हैं अच्छे-दिन  
दुष्प्रचार और दमन हैं उनके हथियार  
यह ऐसा निज़ाम है  
जो गरीबों पर रोज गुराता है  
मगर थैलीशाहों के आगे दुम हिलाता है  
इस निज़ाम से लड़ना आसान नहीं  
पर इससे जरूरी कोई काम नहीं।